राजस्थान में राजस्व प्रशासन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

डॉ. प्रकाश इन्दालिया – सह आचार्य(लोक प्रशासन), माधव विश्वविद्यालय,पिण्डवाडा (सिरोही)

E-mail – dr.prakashindalia@gmail.com

सारांश: राजस्थान भारत का प्रमुख राज्य हैं। प्रशासनिक व राजनैतिक दृष्टिकोण से इस राज्य का नामकरण भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् सन् 1949 में हुआ। इससे पूर्व यह राजपूताना कहलाता था। इसका सांस्कृतिक इतिहास अतीत के अंधकार को भी जगमगाता रहा हैं। राजस्थान का यह मरूस्थलीय भाग प्राचीनकाल में काफी नम, हरा–भरा और विकसित थां। पूर्वी राजस्थान में आहड़ तथा गिलूंड (उदयपुर) में ताम्र–प्राषाण कालीन सभ्यता के प्रमाण मिले हैं। नागौर, धनोप तथा थाना (भीलवाड़ा) के घने जंगलों में प्राचीनकाल प्रस्तर कालीन सभ्यताऐं विकसित हुई थी। नोह (भरतपुर) में अनेक प्राचीन टीलों की खुदाई से प्रस्तर कालीन सभ्यताओं से लेकर नवीन प्रस्तर युग की सभ्यताओं के प्रमाण मिलते हैं। ये सभी प्रमाण यह बतलातें हैं कि राजस्थान भारत के एक अन्य प्राचीन सभ्यता का प्रदेश रहा हैं।

प्राचीनकाल– प्राचीनकाल में राजकीय आय का मुख्य साधन भूमिकर था। उत्पन्न की हुई वस्तुओं से प्राप्त राजा का भोग रज्जोभाग कहलाता था। यही रज्जोभाग अब राजस्व कहलाता है। यह कर सरकार को इसलिये देय है कि वह सब भूमि की अधिपति है। भारत में चिरकाल से ही राजा द्वारा भूमि की उपज का छठा भाग भूमिकर के रूप में लिया जाता रहा है। कौटिल्य के प्रशासन में कहा गया है कि जनपदों से अन्न का तृतीय/चतुर्थाशं राज्य कर के रूप में लिया जाना चाहिए। धान्य का चौथा, वन उपज का छठा भाग राज कर के रूप में लिया जाना चाहिए।

मौर्यकाल– मौर्यकाल में राज्याधीन, भूमि से प्राप्त आय को 'सीता' कृषकाधीन भूमि से प्राप्त आय को भाग कहा जाता था तथा सेतु व वनकर आदी राजस्व के रूप में वसूल किये जाते थे।

गुप्तकाल – गुप्तकाल में भूमिकर को 'भाग कर' तथा 'उद्रंग' कहा जाता था। तथा राज्य द्वारा भूमि का उचित प्रबंध किया जाता था। मौर्य व गुप्त तथा वर्धन साम्राज्यों में राजस्व प्रशासन में सर्वोच्च न्यायिक व प्रशासकीय अधिकारी राजा ही या उसके सहायतार्थ प्रधान या आमात्य होता था। उसके अधीन प्रान्त अधिकारी, समाहर्ता एवं उसके सहायक होते थे।

मध्यकाल – मध्यकाल में राजस्व प्रशासन राज्यांतर्गत क्षेत्रों में एक समानता के आधार पर प्रभावी हुआ परंतु जागीरी क्षेत्र में सामंती व्यवस्था का प्रभाव रहा। अकबर के समय हर परगने में राजस्व प्रशासन के संचालन के लिए निश्चित कर्मचारी कार्यरत थे। राजा या शासक ही सर्वोच्च अधिकारी था। वही स्वेच्छा से न्यायाधीशों को नियुक्त करता व हटाता था। राज्य की 60 प्रतिशत भूमि सामन्तों के अधीन थी तथा शेष 40 प्रतिशत खालसा अथवा शासक के पास थी।

ब्रिटिशकाल – ब्रिटिश प्रभाव से रियासतों में भी राजस्व प्रशासन को संगठित करने का प्रयास किया जाकर राजस्व मण्डल गठित किये गये। कहा जाता है कि भारत संघ में विलय होने वाली अधिकांश राजपूताने की रियासतों में किसी न किसी प्रकार के राजस्व कानून तो थे किन्तु वह शोषणकारी नीतियों–रीतियों को ही कानूनी जामा पहनाने वाले थे। पूर्व में भूमि जागीरदारों व अन्य बिचौलियों के हाथों में थी विधि के शासन का सर्वथा अभाव था। राजस्व का अनुमान तथा वसूल करने के तरीके आदिमकालीन, पीड़ापूर्ण व अबोधिक थे। हवलदारों व लम्बरदारों के सहयोग से कृषकों से बीसों प्रकार के लाग–बाग और नजराने लिये जाते थे। भू–राजस्व रियासतों की आय के मूल स्त्रोत थे, इस कारण स्वयं शासक इस सामन्तशाही, बर्बरता का सहभागी था। सभी प्रकार के बिचौलिये बेधड़क कृषकों का शोषण करते थे। वर्तमान राजस्व प्रशासन का उद्भव अनेक बर्बरता से पूर्ण तंग गलियों में जीवनदान करने के उपरांत हुआ है।

कुंजी शब्द: रज्जोभाग, राजस्व, भूमिकर, भाग कर, जागीरी क्षेत्र, खालसा.

प्रस्तावना :

राजस्थान भारत का प्रमुख राज्य हैं। प्रशासनिक व राजनैतिक दृष्टिकोण से इस राज्य का नामकरण भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् सन् 1949 में हुआ। इससे पूर्व यह राजपूताना कहलाता था।यहाँ मानव अधिवास के कुछ स्थल अत्यन्त प्राचीन सभ्यताओं के परिचायक हैं।

पुरात्तत्ववेत्ताओं के अनुसार कालीबंगा (श्रीगंगानगर) प्राचीन सरस्वती नदी के किनारे आज लगभग 5000 वर्ष पूर्व कृषि व व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र राजस्थान का यह मरूस्थलीय भाग प्राचीनकाल में काफी नम, हरा–भरा और विकसित थां।

पूर्वी राजस्थान में आहड़ तथा गिलूंड (उदयपुर) में ताम्र–प्राषाण कालीन सभ्यता के प्रमाण मिले हैं। नागौर, धनोप तथा थाना (भीलवाड़ा) के घने जंगलों में प्राचीनकाल प्रस्तर कालीन सम्यताऐं विकसित हुई थी। नोह (भरतपुर) में अनेक प्राचीन टीलों की खुदाई से प्रस्तर कालीन सभ्यताओं से लेकर नवीन प्रस्तर युग की सभ्यताओं के प्रमाण मिलते हैं। ये सभी प्रमाण यह बतलातें हैं कि राजस्थान भारत के एक अन्य प्राचीन सभ्यता का प्रदेश रहा हैं।

महाभारत और पौराणिक गाथाओं से ज्ञात होता है कि जांगलदेश (बीकानेर), मरूकातंर (मांरवाड़) आदि क्षैत्रों से बलराम और कृष्ण गुजरे थें। मालवों की शक्ति का केन्द्र जयपुर के निकट नगर था। समयान्तर में मालव अजमेर, टोंक तथा मेवाड़ के क्षैत्र तक फैल गयें। विराट में मिले अवशेषों तथा अशोक मौर्य के अभिलेख से प्रमाणित होता है कि यह सब तब मौर्य साम्राल्य (ई.पू. 321–191) के अन्तर्गत रहा। बाद में यह कुषाण (ई. स. 10–226) साम्राज्य के अधीन रहा।

गुप्त सम्राटों (ई.सन्320–530) में राजस्थान क मालक यौधेय, आभीर आदि गणराज्यों को समाप्त नहीं किया अपितु इन्हें अर्द्ध–आश्रीत रूप में बनाये रखा। इस सिति में ईसा की पांचवी शताब्दी तक गणराज्य के रूप में बने रहें। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद केन्द्रीय शक्ति का अभाव उत्तरी भारत में एक प्रकार की अव्यवस्था का प्रवर्त्तक बना। राजंस्थान की गणतंत्रीय जातियां, जिन्होंने गुप्ताओं की अर्द्ध–अधीरता स्वीकार कर ली थी इस अव्यवस्था से लाभ उठाकर फिर स्वतंत्र हो गई और परस्पर विरोधी भावना से अपने–अपने अधिकार क्षैत्र को बढाने में लग गई। इस पारस्परिक विद्वेष की प्रवृत्ति तथा आचरण ने इन्हें निर्बल बना दिया। ऐसी दशा में हुणों के विध्वंसकारी आक्रमण आरम्भ हो छठी शताब्दी में हूण अपनी नृशंस प्रवृत्ति से वैराठ, रंगमहल, बड़ा पीर सुल्तान की थड़ी आदि समृद्ध स्थानों को नष्ठ–भ्रष्ट करने में नहीं हिचके। इस कारण छठी शताब्दी में यहाँ सदीयों से पनपी हुई गणंतंत्रीय व्यवस्था हमेशा के लिए समाप्त हो गई।

अंग्रजों ने उनकी सुरक्षा हेतु अपनी सेना राज्यों में रख दी या उनकों सुरक्षा देने का आश्वासन दे दिया। सामान्यतः सेना का खर्चा राजा वहन करता था और वह सेना ब्रिटिश कम्पनी या सरकार के नियत्रंण में रहती थी। इस कारण राजस्थान के नरेश सैनिक दृष्टि से पूर्णतया अशक्त हो गयें। वे अंग्रजों का किसी भी प्रशासनिक निर्णय पर विरोध नहीं कर सकते थें। रियासतों में अंग्रजी राजदूत इतने शाक्तिशाली हो गये कि शासकों तथा उनके समर्थक दलों की सत्ता कमजोर बन गई और राज्यों के आन्तरिक शासन पर ब्रिटिश अधिकारियों का निंयत्रण पूर्णतया स्थापित हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेज शासन में परिवर्तन करते रहे और राजस्थान के शासक मूक बन कर देखते रहें।

यह भी कटु सत्य है कि प्रशासन में सुधार करने में ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य न तो यहाँ स्वच्छ प्रशासन देना था और न ही यहाँ राज्यों की उन्नति करना था। इसके विपरीत ब्रिटिश सरकार प्रशासन में अनेक सुधार करके अपना ही हित साधना चाहती थी। यह अवश्य हुआ कि सत्ता में कुछ विकेन्द्रीकरण हुआ लेकिन सत्ता वास्तवकि रूप से अंग्रेज रेजिडेन्ट के हाथों में केन्द्रित हो गईं। स्थिति यहाँ तक हो गई कि रेजिडेन्सी के हाथों के केन्द्रित हो गईं। स्थिति यहाँ तक हो गई कि रेजिडेन्सी में थोड़ी सी फुसफुसाहट राज्य में तुफान का संकेत देने वाली समझी जाने लगी। यों काफी प्रशासनिक सुधार हुए और कल्याणकारी कार्य भी हुए। तब ही भूमि बन्दोबस्त एवं राजस्व प्रशासन में सुधार संभव हो सके, जिन पर प्रकाश हम आगे डालेगें। इन भू राजस्व सुधारों से राज्यों की आय में अवश्य वृद्धि इस कारण की गई थी कि ब्रिटिश सरकार अपने घातक सिद्ध हुआ। उन्हें अधिक राजस्व देना पड़ा और करों में बढोतरी हुई। उसके परिणाम स्वरूप गावों का सुरम्य जीवन समाप्त हो गया और जब किसानों में चेतना आई तक कोई आन्दोलन हुए। तब ही भारत में भी स्वतंत्रता संघर्ष चल रहा था। इसके परिणाम स्वरूप जनता के त्याग और बलिदान के कारण 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हो गया और उसका सुखद फल, 18 रियासतों तथा 3 ठिकानों को एक प्रांत के रूप में एकीकरण होकर चखने को मिला। सन् 1949 की 30 मार्च को राजस्थान राज्य का निर्माण हो गया। इसमें 18 रियासतों–उदयपुर, कोटा, बून्दी, सिरोही, करौली, जैसलमेर, झालावाड़, भरतपुर, धौलपुर, टौंक तथा 3 ठिकानों– कुशलगढ़, लावा और निमराना सम्मिलित थें। 1 नवम्बर 1956 को पूर्व अंग्रेज शासित अजमेर–मेरवाड़ा उपप्रातं भी सम्मिलित हो गया। एकीकृत राजस्थान के लिये राजस्व प्रशासन हेतु राजस्व मण्डल की स्थापना नवम्बर 1949 में हुई। यह भू–राजस्व सम्बन्धी मामलों के सम्बन्ध में राज्य का उच्चतम न्यायालय हैं। प्रशासनिक दृष्टि से भी समस्त अधीनस्थ राजस्व कार्यालयों पर राजस्व मण्डल का नियंत्रण रहता हैं।

प्राचीन राजस्व प्रशासन:

भारत के प्राचीनकाल ग्रन्थ ऋग्वेद में बतलाया गया हैं कि समाज की सुव्यवस्था, नियमपालन, न्याय, सुरक्षा एवं कल्याण की भावना एवं सुयोग्य शासन व्यवस्था द्वारा ही सम्भव हैं।आर्यो की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार पशुपालन और कृषि था। ऋग्वेद आर्य हल के द्वारा खेती करते थे। जिनमें बैल जुतते थे। ऋग्वेद में जुताई, बुआई, कटाई और ओसाई का उल्लेख मिलता हैं। आर्य यव अर्थात् जौ नामक अनाज पैदा करते थें। कबीले के सदस्यों का पशुओं पर समान अधिकार था। लेकिन समवेत भूमि पर नहीं था। ऋग्वेद में भूमि और भूमि की माप प्रणाली के विषय में कई उल्लेख हैं लेकिन उसमें किसी व्यक्ति के द्वारा भूमि की बिक्री, हस्तान्तरण, गिरवी अथवा दान का वर्णन नहीं किया गया है। इससे स्पष्ट है कि तब तक भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व का प्रचलन नहीं था।

राजकीय आय का मुख्य साधन भूमिकर था। उत्पन्न की हुई वस्तुओं से प्राप्त राजा के भाग को रज्जोभाग कहा जाता था। यही रज्जोभाग अब राजस्व कहलाता हैं।

मौर्य–प्रशासन:

मौर्यकालीन राजस्व प्रशासन की विस्तृत जानकारी मुख्यतः कौटिल्य के अर्थशास्त्र, मेगस्थनीज की इण्डिया और अशोक के अभिलेखें से प्राप्त होती हैं। कौटिल्य ने समाहर्ता के लिये जो कर्त्तव्य दिये है, वे आज के जिलाधीश अथवा कमिश्नर के समकक्ष हैं राजस्व प्रशासन, प्रशासन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग था। कौटिल्य ने स्वयं कहा है कि सम्पूर्ण कार्य 'कोष' पर निर्भर करते हैं, अतः राजा को सबसे अधिक कोष बढाने पर ध्यान देना चाहिये। मौर्य काल में राज्य की आय का मुख्य श्रोत भूमि–कर था। आधुनिक युग के समान बिक्री कर की व्यवस्था थी, आयात व निर्माता कर भी लगा सकता था। राजस्व विभाग का सर्वोच्च अधिकारी समाहर्ता होता थां जिसके अधीन शुल्काध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, मुद्राध्यक्ष आदि कर्मचारी कार्य करते थें।

गोपा वर्तमान पटवारी के समकक्ष था जो राजस्व प्रशासन का नीचे का कर्मचारी था। प्रपेष्ण लीज गोद तथा स्थनिक का निरीक्षण करते थें। प्रदेष्ठा सब डिवीजनल अधिकारी के समान होता था तथा ये सभी समाहर्ता के अधीन कार्य करते थे।

मौर्य काल में भूमि दो श्रेणियों में विभक्त थी–

1. वह भूमि जो सीधे राज्य के अधिकार में थी। इससे राज्य को जो आय होती थी उसे सीता कहते थें।
2. वह भूमि जो किसानों के अधीन थी और उससे मिलन वाली आय को भाग कहा जाता था। वह भाग किसान की कुल उपज का चौथा या पांचवा भाग होता था।

डॉ. रामशरण शर्मा के शब्दों में "मौर्य शासन अत्यन्त केन्द्रीयकृत था..... हमारे सभी अध्ययन स्त्रोत केन्द्रीकृत नौकर शाही नियंत्रण का स्पष्ट संकेत देते हैं। सुगठित पुलिस तथा सैन्य संगठन और राजस्विक तंत्र के साथ मिलकर केन्द्रीकरण की इस प्रवृत्ति ने राजसत्ता को अभूतपूर्ण शक्ति प्रदान की जिसकी अभिव्यक्ति 'शासन से हुई।"

गुप्त प्रशासन:

मौर्य साम्राज्य की समाप्ति क पश्चात् कई शताब्दियों के राजनीतिक विघटन के बाद ई.स. 320 में गुप्त साम्राज्य का उदय हुआ। प्रशासनिक सुविधा के उद्देश्य से गुप्त साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभक्त था। प्रत्येक प्रान्त को, भुक्ति, देश, भोग आदि कहा जाता था। प्रत्येक भुक्ति 'विषय में विभक्त था जो वर्तमान जिले के समान था। विषय पति जिलाधिकारी के समकक्ष था तथा उसे राजस्व तथा कानून प्रबंधन के अधिकार प्राप्त थें।

गुप्तकाल में पुजारियों और मंन्दिरों को राजस्व व प्रशासन के अन्य अधिकारों के साथ भूमि और गाँव अनुदान के रूप में दिये जाने लगे जिससे प्रशासनिक व्यवस्था में बिखराव पैदा हो गया। अनुदान में गांवों के किसानों, दस्तकारों और अन्य निवासियों को वृतिभोगियों के आदेशों का पालन करना पड़ता था तथा वृतिभोगी प्रचलित करों कि वसूली करते थें।

जिन लोगों को भूमि के अनुदान मिले हुए थें उन्हें चोरों और अन्य अपराधियों को सजा देने का भी अधिकार था। पांचवी शताब्दी से ही उन्हें दीवानी मुकदमों की सुनवाई का अधिकार भी मिल गयां पुजारियों को फौजदारी और दीवानी अधिकारों के साथ–साथ करों की वसूली का भी अधिकार मिलने से स्पष्टतः केन्द्रीय सता कमजोर हो गई तथा इससे अनुदान प्राप्त गांवों के किसानों ओर निवासियों को दमन का शिकार होना पड़ा था।

इस प्रकार भूमि अनुदानों की प्रथा से भारत में सामन्ती व्यवस्था का मार्ग प्रशास्त हो गया। कई अभिलेखों में कृषिदास प्रथा के उद्‌भव का उल्लेख मिलता हैं जिसका अर्थ है कि वृतिभोगियों को भूमि देने के बाद भी किसान उनकी भूमि से जुड़े रहते थें। इस प्रकार किसानों की स्वतंत्र स्थिति की उपेक्षा की गई और वे कृषिदास या अर्धकृषिदास की अवस्था में आ गयें।

गुप्तकाल में भूमि का नियमित माप होता था तथा खेतों के स्वामी व खेतों की सीमा विवरण रखा जाता था। भूमि के उपजाऊपन के आधार पर भूमि के कई प्रकार थें। भूमि के उपजाऊपन के आधार पर भूमि के कई प्रकार थे–(1) वाल (खेतीहर भूमि) (2) खिल (परती) (3) वास्तु (आबादी) (4) अप्रदत (बंजर) (5) अप्रदा(जिससे सरकार को कोई–आय नहीं होती थी) कहीं भूमिकर के लिए भागकर और कही उद्रंग का प्रयोग हुआ हैं। भूमि के उपजाऊपन के आधार पर भूमिकर छठे से लेकर चौथाई तक लिया जाता था। भूमिकर अत्र के रूप में अधिक लिया जाता था और मुद्रा के रूप में कम। भूमि अनुदानियों को अपनी भूमि का बन्दोबस्त करने का भी अधिकार दिया जाता था जिसके कारण किसानों की स्थिति दयनीय हो गई। अनुदानियों की आसामियों को बेदखल करने का अधिकार प्राप्त थां। इससे स्थायी आसामी अनुदानियों की मर्जी से ही काश्त कर सकते थें।

बेगार प्रथा (विष्ठी) और कई प्रकार की वसूलियों और लगानों से लदें रहने के कारण किसानों की आर्थिक स्थिति और भी जर्जर हो गई। उन्हें सभी प्रकार के कार्य निःशुल्क करने के लिये विवश किया जाता था सैनिकों एवं अधिकारियों आदि के गाँव वालों को धन और रसद का इन्तजाम करना पड़ता था। ऐसे अंशदानो के अलावा गांव वालों से कई नए कर भी वसूल किये जाने लगे जिससे किसानों पर बोझ लद गया।

हर्षवर्धन प्रशासन–गुप्त साम्राज्य के पश्चात् उत्तरी भारत में वर्धन साम्राज्य का उदय हुआ। इस वंश के शासक हर्षवर्धन का शासन सातवीं सदी के भारतीय इतिहास का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना था। उसका शासन भारत के स्वर्णयुग और मध्यकालीन युग के बीच की महत्त्वपूर्ण कड़ी था। हर्षचरित तथा देनसांग की भारत यात्रा के विवरण में हर्ष के शासन काल (606ई.–646ई.) का विवरण मिलता हैं।

हर्ष के साम्राज्य की प्रशासनिक इकाइयों में भुक्ति, विषय पथक और ग्राम थें। भुक्ति का अर्थ प्रान्त था। विषय भुक्ति का एक भाग थां जिसे आधुनिक जिला कहा जा सकता हैं। पथक एक लधु प्रशासनिक इकाई थी जिसकी तुलना आधुनिक तहसील या उपखण्ड से की जा सकती हैं। कुछ गांवों का समुह पथक कहलाता था। ग्राम प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। हर्ष चरित में पंचकुल (पंचायत) का भी उल्लेख मिलता हैं।

हर्ष कालीन चीनी यात्री हवेनशांग ने भारतीय राजस्व व्यवस्था को उदार बतलाये हुए सराहना की हैं। उसने बताया है कि लोगों से बेंगार नहीं ली जाती थी। कर हल्के थें। जो लोग राजकीय भूमि पर कृषक के रूप में कार्य करते थें वे परिवार के व्यक्तियों की भाग देते थें। तब ग्राम वासियों द्वारा देय करों में उद्रंगए भाग, भोग हिरण्य आदि थें। उद्रंग एक प्रकार का भूमि कर था जिसका अर्थ किस द्वारा दिया जाने वाला कर बतलाया गया हैं। कुछ इतिहासकार "भाग भोगकर" को एक और कुछ दो या तीन पृथक् कर मानते हैं। इन्हें पूथक्–पृथक् शब्द मानने पर भाग का अर्थ होगा, खेत की उपज का निशिचत छठा अंश जो राज्य का मिलता था। भोग शब्द उपभोग के अर्थ में आता था। इसका परिभाषित अर्थ जागीर हैं। भाग के साथ उपभोग के अर्थ में आता हैं। इसका परिभाषित अर्थ जागीर हैं। भाग के साथ इसका उल्लेख एक विशिष्ट कर के लिये होता था जिसे ग्रामीण जनता राजा को समय समय पर फलों, काष्ठ और फूलों आदि के रूप में चुकाती थी। हिरण्य का अर्थ कुछ फसलों पर नकद के रूप में लिया जाने वाला राज्यांश माना जाता हैं।

हवेनसांग के अनुसार राजकीय भूमि चार भागों में विभक्त थी। (1) प्रशासन के व्यय और राजकीय पूजा उपासना के लिए (2) बड़े सामाजिक कर्मचारियों के अनुदान के लिए (3) उच्च कोटि के विद्वानों को पुरूस्कृत करने के लिये और (4) विभित्र सम्प्रदायों को दान देकर पुण्यार्जन के लिए। राधाकुमुद मुकर्जी ने उचित लिखा है कि हर्ष का शासन प्रबन्ध गुप्त राजाओं के शासन प्रबन्ध के समान उत्कृष्ट नहीं था। फिर भी उसका शासन की तुलना में प्रभावशाली था।

मध्ययुगीन राजस्व प्रशासनः

प्राचीन भारत में राजस्व प्रशासन में जो कदम उठाये गये थें समयानुसार विकसित होते रहे और मध्ययुग में भी उनमें किसी प्रकार के कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हुए। डॉ. यू. एन. घोषाल ने अपनी पुस्तक "कण्ट्रीब्यूशन टू दि हिस्ट्र ऑफ हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम" में लिखा है कि "प्राचीन भारतीय प्रशासन की राजस्व शाखा में जो क्रम बढता दिखाई देता है वह शासन के किसी दूसर क्षैत्र में दिखाई

नहीं देता हैं।" गुप्त साम्राज्य के पश्चात् की दो शताब्दियों न मध्यकाल की प्रारम्भिक प्रवृत्तियाँ धीरे–धीरे स्पष्ट होने लगी। एक नई राजनीतिक व्यवस्था, जिसे हम अब सामन्तवाद कहते हैं का आर्विभाव हुआ। यहां का सामन्ती तंत्र अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के अनुसार विकसित हुआ। वर्णव्यवस्था व जाति भेद की प्रबलता, मालिकाना अधिकार की विशिष्ट नागरिक जीवन की अनुवृति के परिणाम स्वरूप यहाँ सामन्तवाद वह रूप कभी नहीं ले पाया, जो इसने यूरोप में लिया।

सामन्त का मूल अर्थ समीपवर्ती सीमावर्ती आदि थां कालान्तर में यह शब्द उन पड़ौसी राजाओं के लिये प्रयुक्त होने लगा जो अधीन बना लिये जाते थें। सम्राट के प्रभुत्व में रहना स्वीकार करने वाले राजाओं को विजेता सम्राट अपने साम्राज्य में विभिन्न पदों पर नियुक्त कर देते थें। राज्य के कुछ अधिकारियों को भी सामन्तों जैसा गौरव और अधिकार दिया गया। अधिकारियों को नियमित वेतन वेतन के स्थान पर किसी भूखण्ड(गांव) विशेष की राजकीय आय का अधिकार देने के प्रवृत्ति से यह व्यवस्था और भी सुदृढ़ हो गई। बाद में सामन्त एक आदरसूचक उपाधि बन गया। सामन्तों की अनेक श्रेणियां बन गई और उनका रूप स्थिर हो गया। सातवीं शति के अभिलेखों में सामन्त शब्द का प्रयोग बहुप्रचलित हो गया।

सामन्त सम्राट को कर देते थे। कर देना सामन्तों के प्रमुख दायित्वों में सें था। सम्भवतः सामन्त अपने प्रदेश में कर वसूल करके उसका निशिचत भाग राजकोष में जमा कराते थें। सामन्तें का एक महत्वूपर्ण दायित्व था। युद्ध में अपनी सेना के साथ सम्राट के पक्ष में पड़ने के लिए उपस्थित होना। सामन्त लोग विशिष्ट अवसरों पर भी राजसभा में उपस्थित होते थें। बहुत से सामन्त राजदरबारों में सभासदों के रूप में रहते थें। सामन्तों का प्रभाव उनके पद, शाक्ति और व्यक्तित्व पर निर्भर करता था।

सन् 1570 के पश्चात् मुगल बादशाह अकबर ने राजस्थान की रियासतों के प्रशासन में हस्तक्षेप कर अपनी नीति चलाना आरम्भ कर दियां यहाँ के राजाओं ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इससे उनको दो प्रत्यक्ष लाभ मिले, प्रथम बाहरी आक्रमणों की आशंका से छुटकारा और दूसरा गुगल संरक्षण से आतंरिक विद्रोही से निपटने में सुविधा। इससे राज्य को स्थापित प्रदान करने का सुअवसर मिल गया। मुगल बादशाहों ने उन्हें अपने विभिन्न दायित्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया तथा समय–समय पर अनेक प्रशासनिक पदों को सौंपा, जिन्हें लगन व निष्ठा के साथ यंहा के शासकों ने निभाया। मुगल सेवा के बदले उन्हें राज्य से बाहर कई समृद्ध जागीरें होती थी। जिनसे प्राप्त होने वाली आय अपने राज्य के अधिक होती थी। उससे आई समृद्धी व शाही अभियानों में लूट की आय न राज्य क आतंरिक प्रशासन की शक्ति व प्रभाव बढाने में महत्त्वपूर्ण योग दिया। बादशाह अकबर ने विभिन्न प्रशासनिक सुधार किये और उनका यहां के राज्यों की आंतरिक व्यवस्था पर भी स्वाभाविक प्रभाव पड़ा। मुगल सम्राट ने साम्रज्य इसी के फलस्वरूप सन् 1580में जब साम्राज्य का 12सूबों में बांटा गया। तब राजस्थान की तत्कालीन रियासतों अजमेर सूबे के अन्तर्गत कर दी गई। सूबे में एक सी शासन व्यवस्था को लागू किया गया और यंहा एक ही प्रकार के अधिकारियों की नियुक्ति की गईं। मेवाड़, मारवाड़, आमेर आदि मुगलों के अधीन स्वशासित राज्य थें। लेकिन उन्हें अजमेर सूबे की सरकारें कहा जाता था। विभिन्न राज्यों को हर सूबे की सरकार और कभी–कभी परगना भी कहा जाता था।

सूबा जिलों में विभाजित था जो सरकारें कहलाते थें। सरकारें महाल या परगनों में विभाजित थी और परगने का निर्माण लगभग 100गाँवों के मिलने से होता था। परगनों, जिलों और सरकार का आकार निंशिचत नहीं था। परगना राज्य के शासन की सबसे छोटी इकाई थीं। अकबर के समय में हर परगने राज्य के शासन की सबसे छोटी इकाई थीं। अकबर के समय में हर परगने में एक फौजदारी व कौतवाल के रूप में काम करता था। आमिल का मुख्य कार्य परगने की मालगुजारी की वसूली व निर्धारण था। मालगुजारी की वसूली करते समय शिकदार आमिल की सैनिक सहायता करता था। मालगुजारी की वसूली करते समय शिकदार आमिल की सैनिक सहायता करता था। आमिल किसानों के निकट सम्पर्क में था। कानूनगों जोती गई भूमि, उसमें बोई फसल, होने वाली पैदावार और लगान आदि से संबंधित पूरा ब्यौरा रखता था। जिसके आधार पर आमील लगान को निशिचत करता था। इसके अलावा कानूनगों मालगुजारी के निर्धारण में सहायता करता था और अमीन द्वारा निर्धारित किये गये लगान के कागजातों तथा कबूलियत पत्रों पर चौधरी और मुकादम के साथ स्वंय के हस्ताक्षर भी करता था। अमीन का प्रमुख कार्य परगने की कृषि योग्य भूमि का पता लगाना, उसका हिसाब और लगान निशिचत करना था। अमीन, कानूनगों, चौधरी और काजी के हस्ताक्षर से जमाबन्दी तैयार करता था तथा किसानों को पट्टे देता था तथा उनसे कबूलियत (स्वीकृति पत्र) लिखवाता था। पटेल या चौधरी गाँव का प्रमुख अधिकारी था। वैसे तो यह पद वंश परम्परागत था लेकिन कभी–कभी इस पद की खरीद बेचान भी होती थी।

सामान्यतया चौधरी गाँव का ही होता था जिसके प्रमुख कार्यो में गांव के किसानों से लगान की वसूली, शांति कायम रखना, और चौरी, डकैती आदि का पता लगाना था। वह किसानों को परती भूमि और तकाबी ऋण भी बांटता था। लगान वसूली के लिये चौधरी को दस्तूरी मिलती थी। पटवारी किसानों से सम्बन्धित व्यक्ति या जो किसानों के व्यक्तिगत लगान, भूमि, लेन–देन का हिसाब रखना उसका प्रमुख कार्य था।

स्वाधीनता प्राप्ति तथा देशी रियासतों के भारत संघ में विलयन के सन्दर्भ में, खातेदार किसानों को कानूनी को कानुनी दे अधिकार मिलते देखकर बिचौलियों ने क्रूरता व स्वेच्छानारी तरीकों से बेदखल करना शुरू कर दिया। लड़ाई झकडे, संघर्ष और विवाद बढ़ने लगे तथा कानून व्यवस्था बिगड़ने लगी। किसानों को भारी तादाद में बेदखल होते देख सरकार ने उसकी रक्षार्थ अनेक अध्यादेश व अधिनियम जारी किये। किन्तु समस्त राजस्थान के लिए एक समान कानूनी संस्था के अभाव में किसान व आम जनता सन्देह, विभ्रय तथा अस्पष्टता से ग्रसित हो गई। स्वयं अधिकारी गण भी उनके अर्थ और व्याख्या के विषय में सुनिशिचत नहीं थें। भूलेखों में समानता तथा एक क्रियान्वयनकारी प्रभावी प्रशासनिक संस्था का अभाव था।

राजस्व मण्डल

ऐसे विशाल व गौरवशाली राजस्थान में पूर्व में भिन्न–भिन्न संधि पत्रान्तर्गत राज्यों में राजस्व विभाग रेवेन्यु सदस्य व राजस्व मंत्री के अधीन था। बड़ी–बड़ी रियासतों जैसे–उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर व कोटा में राजस्व मण्डल के तहत राजस्व विभाग के अधिकारी विभागाध्यक्ष की है सियत से राजस्व विभाग संचालित करते थें तथा ये सम्पूर्ण राजस्थान के लिए एकीकृत राजस्व मण्डल की स्थापना तक कार्य करते रहें।

राजस्व मण्डल राज. की स्थापना विधिवत रूप से 1.11.1949 को हुई। तब से रियासतों के राजस्व विभागों ने कार्य करना बंद कर दिया। इनके पास बकाया वादों को संभाग के अतिरिक्त आयुक्तों को स्थानान्तरित कर दिया। इन वादों में जो अपील, पूनव्याख्या आदि से सम्बंधित विवाद थें उन्हें नये राजस्व मण्डल राज, में पुनः स्थानान्तरित कर दिया गया। इस प्रकार राजस्व मण्डल, राजस्थान राजस्व में मामलों में अपील, पुनथरिण्या तथा सन्दर्भ का सर्वोच्च न्यायालय बन गया। साथ ही उसे भू–अभिलेख प्रशासन तथा अन्य विधियों का प्रशासन भी सौंपा गया।

निष्कर्ष:

प्राचीन काल से ही राज्य, भूमि और उसके प्रशासन का पर्याय रहा है। आधुनिक काल में यद्यपि विभिन्न नए सामाजिक, आर्थिक एवं औद्योगिक शक्तियों के उदय एवं विकास के कारण राज्य अब भू राजस्व पर इतना आधारित नही रहा है। फिर भी भू–क्षेत्रीयता तथा जनसंख्या, राज्य के भौतिक एवं चेतनामय तत्व रहे है, इसमें भी कृषि भूमि एवं कृषक को सर्वोपरि माना गया है। इसी कारण प्राचीन काल से लेकर मुगल व ब्रिटिश शासकों द्वारा शासन प्रणाली में राजस्व प्रशासन को एक पृथक संस्था अथवा विभाग के रूप में स्थापित किया गया है।

अंग्रेजों द्वारा भी भारत मे अपने शासन की जडों को और अधिक स्थायित्व तथा मजबूती प्रदान करने के लिये एक प्रभावी प्रशासनिक संस्था के रूप मे राजस्व मण्डल की स्थापना की गई जिसका अनुसरण राजपुताना की सभी देशी रियासतों ने किया।

स्वतन्त्रता पश्चात् राजस्थान निर्माण एवं भूमि सुधारों की कियान्विति ने राजस्व प्रशासन के कार्य एवं महत्व को अत्यधिक बढा दिया। सरकार ने राजस्व प्रशासन द्वारा नवीन भूमि सुधार नीतियां लागू कर सरकार व काश्तकारों के मध्यस्थों व बिचौलियों को समाप्त कर ग्रामीणों व काश्तकारों से सीधा सम्पर्क स्थापित किया। 1949 मे राजस्व मण्डल राजस्व की स्थापना राजस्व प्रशासन के शीर्ष संस्थान के रूप में की गई। राजस्व मण्डल राजस्व प्रशासन की सर्वोच्च संस्था है जो समस्त राजस्थान में राजस्व प्रशासन को संचालित एवं नियोजित करता है। प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर अब तक की सभी राष्ट्रीय योजनाओं व कार्यक्रमों, सरकार की नीतियों एवं योजनाओं को कियान्वित करने में तथा सफलता में राजस्व प्रशासन का बहुत बडा योगदान रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ:

1. डॉ. प्रकाश इन्दालिया, शोध प्रबंध राजस्थान में राजस्व प्रशासन का संगठनात्मक एवं कार्यात्मक अध्ययन लोक प्रशासन, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर 2012
2. सुखवीर सिंह गहलोत, राजस्थान में राजस्व प्रशासन, राविरा अंक 85, राजस्व मण्डल राजस्थान

3. रिपोर्ट ऑन दी एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ राजस्थान, (1964–65), गवर्मेन्ट सेन्ट्रल प्रेस, नई दिल्ली
4. राजस्थान सामान्य ज्ञान, 2009, लूसेंट पब्लिकेशन, पटना,
5. डॉ. गिरवर सिंह राठौड, भारत में भूमि प्रशासन की संरचना 2008, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
6. गिरवरसिंह राठौड, भू राजस्व एवं भू अभिलेख प्रशासन 2008, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
7. यू.एन.गोयल, राजस्व मण्डल राजस्थान – एक परिचय राविरा अंक 85
8. डॉ. एस.एल. वर्मा, राजस्व मण्डल राजस्थान, राविरा अंक 85
9. रमेश अरोडा, गीता चतुर्वेदी, भारत में राज्य प्रशासन
10. गिरवरसिंह राठौड, भूमि विधियों एवं राजस्व न्यायालय प्रशासन 2008 पंचशील प्रकाशन, जयपुर
11. राजस्थान भू राजस्व अधिनियम (तहसीलदार, नायब तहसीलदारों के कर्तव्य) नियम 348, सांवतमल माथुर व मानसिंह राष्ट्रवर, बाफना पब्लिशिंग हाउस, जयपुर 1958